ओ३म्

**‘हमारा जीवात्मा अजन्मा, अमर, अनुत्पन्न, सनातन, नित्य व शाश्वत है’**

-मनमोहन कुमार आर्य

संसार की उत्पत्ति व इसमें विद्यमान पदार्थों पर विचार करने पर यह ज्ञात होता है कि जड़ व चेतन दो प्रकार के पदार्थ हैं। जड़ संवेदना से रहित होते हैं और चेतन संवेदनशील होते हैं। यदि हम जड़ पदार्थों को अग्नि में जलाते हैं तो उन्हें कोई पीड़ा नहीं होती परन्तु यदि हमारा कोई अंग अग्नि के सम्पर्क में आ जाता है तो हमें जलन की पीड़ा होती है। हमने कई लोगों की जलने से मृत्यु होती देखी है। हल्की जलन में ही मनुष्य को अत्यन्त कष्ट होता है और वह बेचैन हो उठता है। हमारा शरीर जड़ तत्वों से मिलकर बना है। साधारण भाषा का प्रयोग करें तो हम कह सकते हैं कि हमारा शरीर मिट्टी का बना हुआ है। यह कैसे? इसलिए की यह शरीर अन्नमय है। माता ने जो अन्न आदि पदार्थों को भोजन के रूप में ग्रहण किया उससे शिशु का शरीर बना। मां का दूध भी अन्न को खाकर ही बनता है। अन्न व सभी वनस्पतियां भी मिट्टी से ही उत्पन्न होती हैं। जन्म के बाद बच्चा कुछ बड़ा होता है तो वह अन्न का सेवन करता है और मृत्यु पर्यन्त करता है। इससे ज्ञात होता है कि हमारा शरीर अन्नमय है और अन्न, वनस्पतियां तथा ओषधियां भूमि माता अर्थात् मिट्टी व जल तथा सूर्य के प्रकाश आदि से बनी हैं। अब क्योंकि मिट्टी, जल व सूर्य का प्रकाश आदि जड़ पदार्थ हैं, अतः हम सबके पार्थिव शरीर में इन सबसे भिन्न एक चेतन पदार्थ का अस्तित्व है। वह स्वरूप कैसा है, तो इसका उत्तर शिशु के जन्म, उसके आकार व मृत्यु के समय की स्थिति आदि से ज्ञात होता है।

मनमोहन कुमार आर्य

बालक का जब जन्म होता है तो उसका आकार छोटा होता है। जन्म होने के बाद दिन-प्रतिदिन उसके शरीर में वृद्धि देखी जाती है। यदि विज्ञान की भाषा में कहें तो बचपन में शरीर में नाना प्रकार के प्रकृति के परमाणु व अणु होते हैं जिनकी संख्या आदि समय के साथ वृद्धि को प्राप्त होकर शिशु बाल्यावस्था, किशोर अवस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था से होकर वृद्धावस्था तक पहुंचता है और कुछ समय बाद उसकी मृत्यु हो जाती है। पहले मृत्यु के दृश्य पर विचार करते हैं। मृत्यु के समय जीवात्मा शरीर से पृथक होता है। कोई भी व्यक्ति मरना नहीं चाहता परन्तु एक अज्ञात सत्ता जीवात्मा को प्रेरित करती है व उसकी शक्ति से उसे मजबूर होकर शरीर से बाहर निकलना पड़ता है क्योंकि आत्मा की शक्ति उस प्रेरक शक्ति की तुलना में अति न्यून व अल्प होती है और वह चाह कर भी शरीर में नहीं बनी रह पाती और शरीर को छोड़कर उस सत्ता जिसने उसे शरीर से बाहर निकाला है, उसकी प्रेरणा से नये शरीर की ओर बढ़ती है व ईश्वर की व्यवस्था से उसे प्राप्त करती है। जब जीवात्मा प्राण आदि युक्त सूक्ष्म शरीर सहित स्थूल शरीर से निकलते हैं तो वह अदृश्य रहते हैं। इसका अर्थ है कि आत्मा व हमारा सूक्ष्म शरीर अत्यन्त सूक्ष्म है जिस कारण वह हमें व अन्यों को दिखाई नहीं देते। हमने 38 वर्ष पूर्व अपने जीवन में श्री वचन सिंह नाम के अपने एक कार्यालीय साथी की मृत्यु का दृश्य देखा है। मृत्यु के समय वह वृद्ध व्यक्ति चुपचाप आंखे बंद किये लेटे हुए थे। कुछ क्षणों तक उनकी दोनों आंखों की पलके फड़़फड़ाती रही। और जैसे ही पलकों का फड़फड़ाना बन्द हुआ, उनकी मृत्यु हो गई। आंखों के फड़फड़ाने के अतिरिक्त हमें अन्य कुछ दिखाई नहीं दिया था। वर्षों पुरानी यह घटना आज भी हमारी स्मृति में यथावत् विद्यमान है। इस घटना से यह निष्कर्ष निकलता है जीवात्मा अत्यन्त सूक्ष्म एवं परिमित आकार वाला ऐसा तत्व व पदार्थ है जो आंखों से दिखाई नहीं देता। यह सर्वदेशी या सर्वव्यापक न होकर एकदेशी व अल्प आकार वाला है। जन्म के समय इसके आकार से अनुमान होता है कि यह सूक्ष्म पदार्थ है जिसकी लम्बाई, चैड़ाई व ऊंचाई को शून्य ही कह सकते हैं।

जीवात्मा की उत्पत्ति कैसे हुई, अब इस पर विचार करते हैं। हमने उपर्युक्त विवरण से यह जाना है कि जीवात्मा एक अत्यन्त सूक्ष्म तत्व व पदार्थ है जो आंखों से दिखाई नहीं देता। जब मृत्यु के समय पर यह शरीर से निकलता है तो शरीर का आकार पूर्ववत् रहता है और निकलने वाले पदार्थ का दिखाई न देने का कारण इसका सूक्ष्म होना व अल्प परिमाण वाला होना है। नवजात शिशु में जन्म से पूर्व यह माता के गर्भ में आता है। वहां एक भ्रूण के रूप में रहकर इसका विकास होता है। महर्षि दयानन्द इसे पिता के शरीर से माता के शरीर में आना बताते हैं। अतः स्वाभाविक है कि जीवात्मा का आकार तो अवश्य है परन्तु अत्यन्त सूक्ष्म है और शिशु के शरीर के आकार से तो अत्यल्प होता है। शरीर बढ़ता है जिसका कारण भोजन होता है, वह चाहे माता का दुग्ध हो या फिर अन्य खाद्य पदार्थ। अन्न से तो अन्नमय शरीर ही बन सकता है। जीवात्मा चेतन तत्व है, अतः उसमें वृद्धि भौतिक पदार्थों से कदापि नहीं हो सकती। हम जानते है कि किसी भी पदार्थ का कोई न कोई मूल कारण होता है जिससे वह बनता है। मूल कारण में विकृति होकर नया पदार्थ बनता है। बनाने वाली या विकृति प्रदान करने वाली सत्ता पृथक होती है। इस सत्ता को निमित्त कारण कहा जाता है। मूल प्रकृति में जो विकार होकर कार्य प्रकृति अर्थात् हमारी ज्ञानेन्द्रियां, कर्मेन्द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार तथा सूर्य, चन्द्र, पृथिवी व अन्य ग्रह एवं उनके उपग्रह आदि बने हैं, वह ईश्वर से, जो कि इनका निमित्त कारण है, उसके द्वारा बनाये गयें हैं। जड़ तत्व से जड़ पदार्थ ही अस्तित्व में आते हैं। परमात्मा चेतन तत्व है और सर्वव्यापक तथा निरवयव है। इसमें विकार नहीं होता। यदि होगा तो विकार करने वाला व इससे नई रचना करने वाला पृथक परमेश्वर मानना पड़ेगा। ऐसा इस जगत् में दिखाई नहीं देता। यदि होता तो व्यवस्था दोष उत्पन्न होता और फिर संसार की व्यवस्था चलने में बाधा आती। इस व्यवस्थित संसार को देखकर केवल एक ही ईश्वर होने का अनुमान व प्रमाण मिलता है। अब जीवात्मा के अस्तित्व व इसकी उत्पत्ति पर विचार करते हुए यह देखते हैं कि क्या यह ईश्वर के द्वारा तो नहीं बना है। यदि मान लें कि ईश्वर से बना है तो यह विचार करना होगा कि ईश्वर ने इसे किस वस्तु से बनाया है? जीवात्मा बनाने का कोई पदार्थ सृष्टि में दृष्टिगोचर नहीं होता या ध्यान में नहीं आता है। केवल एक ही सम्भावना पर विचार कर सकते हैं कि ईश्वर का एक आत्मा के परिणाम वाला भाग उससे अलग होकर जीवात्मा बना है? कुछ मतवादी लोग जीवात्मा को ईश्वर का अंश मानते भी हैं। यदि इस बात को स्वीकार करते हैं तो मानना होगा कि इससे ईश्वर का सर्वव्यापक आकार घटेगा भी और खण्डित भी होगा। यदि इस व्यवस्था को मान लेते है तो फिर अनन्त संख्या वाली जीवात्माओं के कारण ईश्वर के अनन्त खण्ड व टुकड़े होना मानना पड़ेगा जिससे ईश्वर, ईश्वर न रहकर एक खण्डनीय पदार्थ बन जायेगा और वह सर्वव्यापक व सर्वान्तर्यामी कदापि नहीं रह सकेगा। दूसरा कारण जिससे यह ज्ञात होता है कि जीवात्मा ईश्वर से नहीं बना वह, ईश्वर व जीवात्मा, दोनों के गुणों में अन्तर का होना है। ईश्वर सर्वव्यापक है तो जीव एकदेशी है। ईश्वर सर्वज्ञ है तो जीव अल्पज्ञ वा अल्पज्ञानी है। ईश्वर आनन्द से पूर्ण है तो जीवात्मा आनन्द से रहित है और इसका जन्म धारण करने का कारण आनन्द व सुख की प्राप्ति करना है। जीवात्मा जन्म व मरण का धारण करने वाला है तो ईश्वर अजन्मा व जन्म धारण नही करता है। इन विरोधी गुणों के कारण यह स्पष्ट है कि जीवात्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व है और वह ईश्वर से या उससे पृथक होकर नहीं बना है अन्यथा दोनों के स्वरूप व गुणों में भेद व अन्तर न होता। यदि जीवात्मा ईश्वर से बनता तो गेहूं से आटे व आटे की रोटी में अपने पूर्व पदार्थ के गुणों की तरह जीवात्मा में ईश्वर के गुण अवश्य होने चाहिये थे तथा कोई भी विरोधी गुण कदापि नहीं होना चाहिये था जबकि ऐसा नहीं है। सबसे बड़ा प्रमाण वेद का है और हमारे दर्शनकारों की विमल बुद्धि से निकले विचारों का है। न्याय दर्शन 1/1/10 में गौतम ऋषि कहते हैं- **“इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःख-ज्ञानान्यात्मनों लिंगमिति।।“** जिसमें इच्छा=राग, द्वेष=वैर, प्रयत्न=पुरूषार्थ, सुख, दुःख, ज्ञान=जानना गुण हों, वह ‘जीवात्मा’ कहलता है। महर्षि कणाद ने वैशेषिक दर्शन 3/2/4 में कहा है कि “**प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तर्विकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनों लिंगानि।।“** अर्थात् प्राण=भीतर से वायु को बाहर निकालना, अपान=बाहर से वायु को भीतर लेना, निमेष=आंख को नीचे ढांकना, उन्मेष=आंख को ऊपर उठाना, जीवन=प्राण का धारण करना, मनः=मनन विचार अर्थात् ज्ञान, गति=यथेष्ट गमन करना, इन्द्रिय=इन्द्रियों को विषयों में चलाना, उनसे विषयों का ग्रहण करना, अन्तर्विकार=क्षुधा, तृषा, ज्वर, पीड़ा आदि विकारों का होना, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न ये सब आत्मा के लिंग अर्थात् कर्म और गुण हैं।

जीव स्वतन्त्र सत्ता है जिसे स्वयंभू सत्ता कह सकते हैं। इसे न तो ईश्वर ने बनाया है न यह कभी बनी है। यह हमेशा हमेशा से है और हमेशा हमेशा रहेगी। हमारी व अन्य सभी प्राणियों की जीवात्मायें किसी अन्य पदार्थ का उत्पाद नहीं हैं जैसे आटे की उत्पत्ति गेहूं से और रोटी की उत्पत्ति आटे, जल व अग्नि के संयोग से होती है। जीवात्मा के अनुत्पन्न, अजन्मा, नित्य, शाश्वत व सनातन सिद्ध हो जाने पर जीवात्मा के परमात्मा से संबंध को जानना भी आवश्यक हो जाता है। ईश्वर ने जीवात्मा के लिए यह भौतिक जगत बनाया है जिसमें सूर्य, चन्द्र, पृथिवी एवं पृथिवी पर अग्नि, जल, वायु, आकाश, नदी, पर्वत, समुद्र, वृक्ष, वनस्पति, ओषधियां, अन्न, फल व फूल आदि नाना प्रकार के पदार्थ बनाये हैं। उसने ही हमारे आदि पुरूष अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा, ब्रह्मा आदि पूर्वज ऋषियों को अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न किया था और अब भी वही ईश्वर हमें माता-पिता के द्वारा व हमारी सन्तानों को जन्म देता है तथा सुख व दुख की उपलब्धि कराता है। इससे ईश्वर से हमारा माता-पिता, आचार्य, बन्धु, मित्र व सखा, राजा, न्यायाधीश आदि का सम्बन्ध स्थपित होता है। इन संबंधों को जानकर और उसकी अहेतुकी कृपा पर विचार कर हमें उसके प्रति कृतज्ञ रहना है और उसकी स्तुति, प्रार्थना व उपासना तथा यज्ञ आदि करके उसका धन्यवाद करना है। विचार, चिन्तन, योगाभ्यास के द्वारा हमें उसके स्वरूप को विचार करते हुए ध्यान की विधि के द्वारा उसका साक्षात्कार करना है और सभी असत्कर्मों को छोड़कर व सत्कर्मों का आश्रय लेकर बन्धनों से मुक्त होकर मुक्ति वा मोक्ष को प्राप्त होना है। इसके साथ ईश्वर द्वारा सृष्टि के आरम्भ में प्रदान किये गये वेद ज्ञान का भी अध्ययन करना है व इनकी रक्षा का प्रबन्ध करने के साथ इन्हें सुरक्षित भावी पीढि़यों को इसके सत्य अर्थों सहित सौंपना भी हमारा कर्तव्य है। ऐसा करके ही हम अपने सृष्टिकर्ता ईश्वर के प्रति उसकी कृपाओं के ऋण से किंचित उऋण होने की दिशा में कार्य कर सकते हैं। जीवन का यही उद्देश्य भी है कि तर्क व विवेक तथा वेदों के अध्ययन से ईश्वर को जानना, उसका साक्षात्कार करना और सत्कर्मों को करते हुए बन्धनों से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त करना। इसी के साथ इस लेख को विराम देते हैं।

**-मन मोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः 09412985121**